महावीराचार्य कृत 'गणितसार-संग्रह'*

—डॉ० अलेक्जेंडर वोलोदार्स्की

मध्यकालीन भारतीय गणित के विकास में महावीराचार्य कृत 'गणितसारसंग्रह' का विशिष्ट स्थान है जिसकी ओर विज्ञान के इतिहास विषयक ग्रंथों में पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। (उदाहरण के लिये दे० सन्दर्भ साहित्य सं० [1])। इस लेख में महावीराचार्य की विषय-वस्तु का विश्लेषण तथा मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है।

महावीराचार्य के जीवन की बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। स्वयम् उन्होंने अपने जन्मकाल, जन्म-स्थान और माता-पिता तथा गुरुओं के विषय में कुछ नहीं लिखा है। 'गणितसारसंग्रह' के पहले अध्याय में लेखक ने किसी भारतीय शासक को संबोधन किया है जिसने सन् 814-815 से लेकर सन् 877-878 तक शासन किया था। चूंकि महावीर ने भविष्य में भी उक्त शासक की सफलता की कामना प्रकट की है इसलिये ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि इस ग्रंथ की रचना नवीं शताब्दी के मध्य में हुई होगी (दे० सन्दर्भ साहित्य सं० [1], [2], [3], [6], [7], [8], [9])।

यह कहना कठिन है कि महावीर भारत के किस भाग में रहते थे। अधिसंख्य विद्वान् उन्हें दक्षिण भारत का निवासी मानते हैं। इसका कारण यह है कि 'गणितसारसंग्रह' की संस्कृत के अतिरिक्त तीन अन्य पाण्डुलिपियों में प्रश्नों की व्याख्या तथा उनके उत्तर कन्नड़ में दिए गए हैं जिसका दक्षिण भारत में मध्य युग में बहुत प्रचार था। इस धारणा के पक्ष में एक तर्क यह भी है कि महावीर जैन धर्म के अनुयायी थे जो मुख्यत: दक्षिण भारत में अधिक प्रचलित है।

'गणितसारसंग्रह' में अंकगणित तथा रेखागणित पूरी तरह से दिए गए हैं, साथ ही बीजगणित तथा संख्या सिद्धांत के भी बहुत-से प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है।

'गणितसारसंग्रह' की विशेषता यह है कि यह पूर्णतया गणित का ग्रंथ है जबकि महावीर से पहले के आचार्यों ने गणित को ज्योतिष की रचनाओं में मिला दिया है। महावीर से पहले की रचनाओं में प्रमुख नियम तो मिलते हैं परन्तु उदाहरण और प्रश्न नगण्य हैं।

महावीराचार्य ने नियम, उदाहरण और प्रश्न सब दिए हैं परन्तु प्रमाण इसमें भी नहीं हैं। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ अनेक मध्ययुगीन भारतीय, अरबी और पाश्चात्य ग्रन्थों से भिन्न नहीं है जिनमें विषय का मतांध निरूपण किया जाता था।

गणित के अधिकांश भारतीय ग्रन्थों में तीन भाग होते हैं—मुख्य भाग जिसमें नियम और प्रश्नों की शर्तें दी रहती हैं; विशेष भाग जिसमें प्रश्नों की शर्तों तथा उदाहरणों को इस तरह दिया जाता है कि परिकलन में आसानी हो; और अंत में परवर्ती आचार्यों की टीका दी जाती है। प्रत्येक भाग की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं। ग्रन्थ का मुख्य भाग पद्य में होता है जिसमें लय नहीं होती परन्तु छंद का ध्यान रखा जाता है। गणित के चिह्न, रेखाचित्र और सूत्र नहीं दिए जाते हैं, संख्याओं को भी शब्दों के द्वारा व्यक्त किया जाता है। दूसरे भाग में प्रश्नों के प्रतिबंधों (शर्तों) और उदाहरणों को सारणियों या पट्टिकाओं के रूप में दिया जाता है। इस भाग में चिह्नों का व्यापक प्रयोग होता है, रेखागणित के प्रश्नों में रेखाचित्र भी दिए रहते हैं। अंतिम भाग में टीका के साथ प्रश्नों के विस्तृत हल तथा उदाहरण दिए जाते हैं और साथ में अन्य ग्रन्थों के संदर्भ और उद्धरण भी।

महावीराचार्य के ग्रन्थ में नौ अध्याय तथा 1131 श्लोक हैं। इनमें से 452 श्लोक नियमों के हैं तथा 679 श्लोकों में उदाहरण तथा प्रश्न दिए गए हैं।

*इस संक्षिप्त अनुवाद में अंकगणित के अंश को छोड़ दिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'गणितसारसंग्रह' मध्ययुगीन भारतीय गणित के ग्रन्थों में सबसे बड़ा है। इसका एक कारण यह है कि इसमें उदाहरणों का अंश मुख्य ग्रन्थ का 3/5वां भाग है। दूसरा कारण यह है कि महावीर ने नियम अधिक विस्तार से दिए हैं। सामान्य नियमों के अतिरिक्त महावीर ने विशिष्ट परिस्थितियों के लिये अलग-अलग नियम भी दिए हैं जो अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलते।

संख्याओं के लिये प्रयुक्त शब्द-चिह्न इस प्रकार हैं—

0—आकाश

1—चंद्र

2—नेत्र, हस्त

3—अग्नि, शिव के नेत्र

4—सागर

5—ज्ञानेन्द्रियाँ, बाण

6—ऋतु

7—शिखर, अश्व

8—सेना, हस्ति, दिशाएँ, शरीर

9—संख्याएँ, ग्रह, पदार्थ

यह शब्द-प्रणाली केवल संख्याओं को व्यक्त करने के लिये थी। इसके द्वारा पूरा प्रश्न हल करना असंभव है। इस प्रणाली को समझने के लिये प्राचीन भारतीय साहित्य, धर्म और मिथकों को अच्छी तरह जानना आवश्यक था।

भारत में गणित को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त था। अपने इस ग्रन्थ के आरम्भ में संज्ञाधिकार प्रकरण में गणितशास्त्र की प्रशंसा में महावीराचार्य ने इस प्रकार लिखा है—

लौकिके वैदिके वापि तथा सामायिकेऽपि यः।
व्यापारस्तत्र सर्वत्र संख्यानमुपयुज्यते ॥

कामतन्त्रेऽर्थशास्त्रे च गान्धर्वे नाटकेऽपि वा।
सूपशास्त्रे तथा वैद्ये वास्तुविद्यादिवस्तुषु ॥

छन्दोऽलंकारकाव्येषु तर्कव्याकरणादिषु।
कलागुणेषु सर्वेषु प्रस्तुतं गणितं परम् ॥

सूर्यादिग्रहचारेषु ग्रहणे ग्रहसंयुतौ।
त्रिप्रश्ने चन्द्रवृत्तौ च सर्वत्रांगीकृतं हि तत् ॥

द्वीपसागरशैलानां संख्याव्यासपरिक्षिपः।
भवनव्यन्तरज्योतिर्लोकल्पाधिवासिनाम् ॥

नारकाणां च सर्वेषां श्रेणीबन्धेन्द्रकोत्कराः।
प्रकीर्णकप्रमाणाद्या बुध्यन्ते गणितेन ते ॥

बीज गणित

संस्कृत में बीज गणित के लिए कई नाम हैं। उनमें से एक है अव्यक्त गणित अर्थात् अज्ञात राशि की गणना की कला। अंक गणित में, जिसे व्यक्त गणित भी कहते हैं, ज्ञात राशि की गणना की जाती है।

ऋण संख्याओं के क्रिया नियम जो ब्रह्मगुप्त की रचनाओं में भी मिलते हैं, महावीर ने इस प्रकार दिये हैं :—"यदि ऋण राशि को ऋण राशि से या धन राशि को धन राशि से गुणा किया जाए या उन्हें विभाजित किया जाये तो उनका फल धन राशि ही होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि दो में से एक राशि धन हो और दूसरी ऋण तो फल ऋण आएगा। यदि धन राशि और ऋण राशि का योग किया जाए तो फल उनके अंतर के बराबर होता है। [9,I,50]*

"दो ऋण या दो धन राशियों का योगफल क्रमशः ऋण या धन होगा। धन राशि, जिसे किसी राशि से घटाना हो ऋण बन जाती है जबकि किसी राशि से घटाई जाने वाली ऋण राशि धन हो जाती है।" [9,I,51]

धन और ऋण राशियों का वर्ग धन होता है। इन वर्गों के वर्गमूल क्रमशः धन और ऋण होते हैं। चूंकि ऋण राशि का वर्ग नहीं होता इसलिए इसके वर्गमूल भी नहीं बनाए जा सकते। [9,I, 52]

इसी तरह के कई नियम महावीर के बाद के भारतीय गणितज्ञों ने भी दिये हैं।

विज्ञान के इतिहास में ऋण संख्याओं का सर्वप्रथम उल्लेख चीनी ग्रन्थ "गणित के नौ अध्याय" के आठवें खण्ड में मिलता है। इस ग्रन्थ में ऋण संख्याओं के जोड़ने और घटाने के नियम भी दिए गए हैं। इसमें ऋण संख्याओं के लिए 'फू' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है—ऋण, उधार, कमी। इस दृष्टि से दोनों भाषाओं के शब्द समान ही हैं। भारत में ऋण संख्याओं की शुरुआत ईसा की आरंभिक शताब्दियों में हुई। परंतु, यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता है कि ऋण संख्याएँ भारतीय गणितज्ञों की ही देन हैं या उन्होंने इन्हें चीन से ग्रहण किया।

रैखिक समीकरण

प्रतिशत, गति, मूल्य की अदायगी आदि के प्रश्नों का हल करते समय या उनके नियम बनाते समय अक्सर रैखिक समीकरण का उपयोग किया जाता है। अनेक प्रकार के प्रश्नों और समस्याओं का हल अज्ञात राशि वाले रैखिक समीकरणों की मदद से निकल सकता है। उदाहरण के लिए:—"यदि किसी राशि के $\frac{1}{8}$; $\frac{1}{4}\cdot\frac{1}{3}$; $\frac{1}{5}\cdot\frac{1}{2}$; $\frac{1}{5}\cdot\frac{1}{3}\cdot\frac{1}{6}$ अंशों का योगफल $\frac{1}{2}$ है तो वह राशि क्या है ?" [9,III,108]

इस प्रश्न को कल्पित नियम के सिद्धांत से हल किया जाता है। "अज्ञात राशि को 1 मानकर इन अंशों का योगफल निकालना चाहिए। अब यदि भागफल को इस ज्ञात योगफल से विभाजित किया जाए तो वह अज्ञात राशि मालूम की जा सकती है। [9,III,107]

एक कल्पित नियम का सिद्धांत उन प्रश्नों के लिए उपयुक्त है जो $ax=b$ तरह के समीकरणों में बदले जा सकते हैं; विशेषकर जबकि कुछ भिन्नों का योगफल 'a' हो। इस स्थिति में x_1 के रूप में वह संख्या चुनी जा सकती है जो कि हर का गुणज हो। यदि समीकरण $ax_1=b_1$ हो, तो हल इस प्रकार होगा :

$$x=x_1\frac{b}{b_1}$$

उपरोक्त नियम परवर्ती अरब और यूरोपीय गणित साहित्य में भी मिलते हैं। सातवीं-आठवीं शताब्दी में बक्षाली हस्तलिपि ग्रंथ में ऐसी समस्याओं के हल दिये गए हैं जिनका समीकरण $ax+b=p$ होता है। यदि समीकरण $ax_1+b=p_1$ हो, तो उसका हल $x=x_1+\frac{p-p_1}{a}$ होगा। [5, पृष्ठ 371]

आर्यभट्ट प्रथम (10, II, 30), ब्रह्मगुप्त (11, XVIII, 43) श्रीपति, भास्कर द्वितीय और नारायण (6, अध्याय 2, पृष्ठ 40-41) ने निम्नलिखित रैखिक समीकरणों को हल करने के नियम दिये हैं :—

$ax+c=bx+d$

ब्रह्मगुप्त का नियम इस प्रकार है :—"एक अज्ञात राशि वाले रैखिक समीकरण में विपरीत क्रम से लिए गए ज्ञात पदों के अंतर को यदि अज्ञात पदों के गुणकों के अंतर से विभाजित किया जाए तो अज्ञात राशि मालूम की जा सकती है।" [6, अध्याय 2; पृष्ठ 40]

$x\left(\frac{a}{b}+\frac{c}{d}+\ldots+\frac{e}{f}\right)+m=x$, इस तरह के समीकरण से संबंधित एक प्रश्न इस प्रकार है :—

१. श्री एम० रंगाचार्य की पुस्तक के संदर्भ अंग्रेजी अनुवाद के अंश के है। अनुवादक —अनु०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"यदि एक स्तंभ का $\frac{1}{8}$ भाग जमीन के अंदर है, $\frac{1}{3}$ पानी में, $\frac{1}{4}$ काई में और स्तंभ और 7 हाथ दिखाई दे रहा है तो स्तंभ की लम्बाई क्या होगी ? [9, IV, 5]

इस प्रश्न का हल महावीराचार्य ने इस प्रकार दिया है :—

$$x = \frac{m}{1-\left(\frac{a}{b}+\frac{c}{d}+\ldots+\frac{e}{f}\right)}$$ [9, IV, 4]

"एक राजा ने कुल आमों का $\frac{1}{6}$ भाग लिया, रानी ने शेष का $\frac{1}{5}$, तीन राजकुमारों ने प्रत्येक के शेष भाग का क्रमशः $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{3}$, $\frac{1}{2}$ और नन्हें राजकुमार ने बचे हुए 3 आम लिए। जिसे मिश्रित भिन्न के प्रश्न हल करना आता हो वह आमों की कुल संख्या बताए ? [9, IV, 29-30]

इस प्रश्न को निम्नांकित रैखिक समीकरण द्वारा हल किया जा सकता है :

$x-a_1x-a_2(x-a_1x)-a_3[x-a_1x-a_2(x-a_1x)]-\ldots=b,$

इसी प्रश्न को हल करने के लिए महावीराचार्य ने निम्नलिखित नियम दिया है :—

$$x=\frac{b}{(1-a_1)\ (1-a_2)\ldots(1-an)}$$ [9, IV, $4\frac{1}{2}$]

निम्न प्रकार के प्रश्नों को हल करने के लिए दो अज्ञात राशियों वाली दो रैखिक समीकरणों की पद्धति उपयोग में लाई जाती है :

"यदि 9 नींबू और 7 सेबों का मूल्य 107 (पैसे) है; 7 नींबू और 9 सेबों का मूल्य है 101 (पैसे), तो बताओ कि एक नींबू और एक सेब का मूल्य क्या होगा ?" [9, VI, $140\frac{1}{2}-142\frac{1}{2}$]

नींबू के मूल्य को यदि x माना जाए और सेब के मूल्य को y तो निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होते हैं :—

$$\begin{cases} 9x+7y=107 \\ 7x+9y=101 \end{cases}$$

इन समीकरणों का सामान्य रूप इस प्रकार होगा :—

$$\begin{cases} ax+by=c \\ bx+ay=d \end{cases}$$

महावीराचार्य की पद्धति पर आधारित एक और प्रश्न नीचे दिया गया है।

"कुल फलों की अधिकतम संख्या से गुणा किये गये कुल फलों के अधिकतम मूल्य में से फलों की न्यूनतम संख्या से गुणा किये गये फलों के न्यूनतम मूल्य को घटाया जाता है। शेष को अधिकतम और न्यूनतम फलों की संख्या के वर्ग के अंतर से विभाजित करने पर अधिकतम फलों का मूल्य ज्ञात होता है। अन्य फलों का मूल्य कुल फलों की संख्या के मूल्य को विपरीत क्रम से गुणा करने पर ज्ञात होता है।" [9, VI, $139\frac{1}{2}$]

इसका हल इस प्रकार है :—

$$x=\frac{ac-bd}{a^2-b^2}; \quad y=\frac{ad-bc}{a^2-b^2}$$

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छठे अध्याय के श्लोक संख्या 270-272 $\frac{1}{2}$ में एक रोचक प्रश्न दिया गया है : "मुर्गों की लड़ाई के समय एक दर्शक ने दोनों मुर्गों के मालिकों से एक समझौता किया। पहले से उसने कहा कि यदि तुम्हारा मुर्गा जीतेगा तो तुम मुझे जीती हुई राशि दोगे और उसके हारने पर मैं तुम्हें जीती हुई राशि का $\frac{2}{3}$ दूंगा। दूसरे मालिक से उसने कहा कि यदि तुम्हारा मुर्गा जीतेगा तो तुम मुझे जीती हुई राशि दोगे और उसके हारने पर मैं तुम्हें तुम्हारी जीती हुई राशि का $\frac{3}{4}$ दूँगा। दोनों ही स्थितियों में दर्शक को 12 स्वर्ण मुद्राएं मिलेंगी। प्रत्येक मालिक को कितना-कितना पुरस्कार मिलेगा ?"

दोनों मालिकों की राशियों को x और y मानते हुए निम्नलिखित समीकरण बनते हैं :—

$$\begin{cases} x - \frac{3}{4}\ y = 12 \\ y - \frac{2}{3}\ x = 12, \end{cases}$$

या सामान्यतः

$$\begin{cases} x - \frac{c}{d}\ y = m \\ y - \frac{a}{b}\ x = m. \end{cases}$$

महावीराचार्य के अनुसार इस पद्धति का हल इस प्रकार है :—

$$x = \frac{b(c+d)}{(c+d)\cdot b - (a+b)\cdot c} \cdot m$$

[9, VI, $268\frac{1}{2} - 269\frac{1}{2}$].

$$y = \frac{d\ (a+b)}{(a+b).d - (c+d).a} \cdot m$$

इसी प्रकार का प्रश्न भास्कर द्वितीय के ग्रंथ में भी दिया गया है। "एक व्यक्ति ने कहा कि यदि तुम मुझे 100 रुपये दो तो मैं तुमसे दुगुना अमीर हो जाऊंगा। दूसरे ने कहा कि यदि तुम मुझे 10 रुपये दो तो मैं तुमसे छः गुना अमीर हो जाऊँगा। प्रत्येक के पास कितनी पूँजी थी ?" [1, पृष्ठ 137-138]

महावीराचार्य के ग्रंथ के 6-वें अध्याय में श्लोक संख्या $90\frac{1}{2} - 91\frac{1}{2}$ का यह निम्नलिखित प्रश्न तीन अज्ञात राशियों वाली तीन समीकरणों की पद्धति से हल होता है।

"अनार, आम और सेब, प्रत्येक के 3 नगों का मूल्य 2 पन, 5 नगों का 3 पन और 7 नगों का 5 पन है। गणित जानने वाले मेरे मित्र जल्दी से यह बताओ कि 76 पन में कितने फल खरीदोगे जिसमें आम सेब से 3 गुना और अनार से 6 गुना अधिक हों।"

प्रश्न के हल के लिए समीकरण इस प्रकार है :—

$$\begin{cases} \frac{2}{3}x + \frac{3}{5}y + \frac{5}{7}z = 76 \\ y = 3z \\ x = 6z \end{cases}$$

x, y, z-क्रमशः अनार, आम और सेब की संख्या बताते हैं। यह पद्धति बड़ी आसानी से एक अज्ञात राशि वाले समीकरण में बदली जा सकती है।

$$228z = 2660$$

इस प्रश्न का उत्तर है :—कुल खरीदे गये अनार, आम और सेबों की संख्या क्रमशः 70, 35 और $11\frac{2}{3}$ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विघात समीकरण

महावीराचार्य के ग्रन्थ में द्विघात समीकरण पर अलग से कोई अध्याय नहीं है। फिर भी कई प्रश्नों का हल केवल द्विघात समीकरणों के मूल ज्ञात करने से निकल सकता है। इस तरह का एक प्रश्न है: "ऊंटों के झुंड का $\frac{1}{4}$ भाग जंगल में है, 15 ऊँट नदी के किनारे और शेष ऊँट जो कुल संख्या के वर्गमूल का दुगुना हैं, पहाड़ी पर हैं। ऊँटों की संख्या क्या है?" [9, IV, 34].

झुंड में ऊँटों की संख्या x मानने पर निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होगा :

$$\frac{1}{4}x + 2\sqrt{x} + 15 = x.$$

अथवा

$$\frac{a}{b}x + c\sqrt{x} + p = x$$

या फिर,

$$\left(1 - \frac{a}{b}\right)x - c\sqrt{x} = p$$

महावीराचार्य इस द्विघात समीकरण को निम्नलिखित नियम से हल करते हैं :

"वर्गमूल के गुणांक के आधे भाग और मुक्त पद को भिन्न रहित इकाई में विभाजित करना चाहिए। इस प्रकार प्राप्त मुक्त पद के वर्ग के कुल योग के वर्गमूल को प्राप्त गुणांक में जोड़ना चाहिए। इस राशि का वर्ग ही अज्ञात राशि है। मूल संबंधी प्रश्नों को हल करने की रीति यही है। [9, IV, 33]

इस नियम के अनुसार हल इस प्रकार निकलेगा :

$$x = \left[\frac{\frac{c}{2}}{1-\frac{a}{b}} + \sqrt{\left(\frac{\frac{c}{2}}{1-\frac{a}{b}}\right)^2 + \frac{p}{1-\frac{a}{b}}}\right]^2$$

ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मगुप्त को भी ज्ञात था कि द्विघात समीकरण के दो मूल होते हैं। टीकाकार पृथुदकस्वामी (सन् 860) के अनुसार इस प्रश्न पर निर्भर करता है कि मूल को जोड़ा जाए या घटाया जाए। [6, खंड 2, पृष्ठ 75).

परंतु ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ में मूलों के इस दोहरे अर्थ का उल्लेख नहीं है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, महावीराचार्य को वर्गमूलों के दोहरे अर्थ मालूम थे। इसका उपयोग निम्नलिखित प्रश्न को हल करने के नियम में किया गया है :

"मोरों के झुंड का $\frac{1}{16}$ वां भाग, जो अपनी ही संख्या से गुणा किया हुआ है, आम के पेड़ पर बैठा है। शेष का $\frac{1}{9}$ वाँ भाग, स्वयं की संख्या से गुणा किया हुआ अन्य 14 मोरों के साथ 'तमाल' के पेड़ पर है। मोरों की कुल संख्या क्या है? [9, IV, 59]

मोरों की कुल संख्या यदि हम x मान लें तो निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होगा :—

$$\frac{x}{16} \cdot \frac{x}{16} + \frac{15x}{16.9} \cdot \frac{15x}{16.9} + 14 = x.$$

या सामान्य रूप में.

$$\frac{a}{b}x^2 - x + p = 0.$$

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस तरह के समीकरण को हल करने का नियम है :—"अपने ही अंश से विभाजित हर तथा मुक्त पद के चौगुने के अंतर को इस हर से, जो कि अंश से विभाजित हो, गुणा किया जाता है। इसके वर्गमूल को अंश से विभाजित इस हर से जोड़ा और घटाया जाता है। इसका आधा ही अज्ञात राशि है।" [9, IV, 57]

इस तरह,

$$x = \frac{\frac{b}{a} \pm \sqrt{\left(\frac{b}{a} - 4p\right)\frac{b}{a}}}{2}$$

कुछ परिस्थितियों में जबकि द्विघात समीकरण के मूलों में से कोई एक मूल प्रश्न के उपयुक्त नहीं होता है, महावीराचार्य केवल वही मूल चुनते हैं जिसके द्वारा सही हल प्राप्त किया जा सकता है।

उच्चतम क्रम के समीकरण

कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका हल एक अज्ञात राशि वाले द्विघात समीकरणों से उच्चतर समीकरणों के द्वारा निकलता है। जैसे ज्यामिति श्रेढ़ी के हर 'q' को ज्ञात करने के लिए समीकरण को हल करना होगा।

$$S = aq^n$$

श्रेढ़ी का हर q, $\sqrt[n]{\frac{s}{q}}$ के बराबर है।

$$q = \sqrt[n]{\frac{S}{a}} \qquad [9, II, 97]$$

N—घात के मूल निकालने के नियम महावीराचार्य ने नहीं दिये हैं। स्पष्टतः ऐसे मूलों की एक चुनी हुई सूची दी जाती थी। "ज्यामिति श्रेढ़ी का पहला पद 3 है, कुल पदों की संख्या 6 है और योगफल है 4095। ज्यामिति श्रेढ़ी का हर क्या है ?" [9, II, 102] यह प्रश्न पंचम घात के समीकरण से हल होता है।

$$3\ \frac{x^6-1}{x-1} = 4095$$

या,

$$3\ (x^5 + x^4 + x^3 + x^2 + x + 1) = 4095.$$

यह समीकरण निम्नलिखित नियम से हल किया जाता है। "योगफल को पहले पद से विभाजित करो। प्राप्त भागफल में से प्रत्येक बार एक इकाई घटाओ। इस संख्या में जितने का भाग दिया जाएगा वही संख्या ज्यामिति श्रेढ़ी का हर होगी।" [9, II, 101].

वास्तव में यदि श्रेढ़ी के हर को x मानें तो n—1 घात का समीकरण इस प्रकार होगा :

$$a\ \frac{x^n-1}{x-1} = S.$$

दोनों भागों को पहले पद से विभाजित करने पर और उसमें घटाने पर निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होता है :

$$x\ \frac{x^{n-1}-1}{x-1} = S_1$$

x से काटने पर और 1 घटाने पर जो समीकरण बना वह इस प्रकार है :—

$$x\ \frac{x^{n-2}-1}{x-1} = S_2.$$

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रढ़ी का अज्ञात हर जिससे अनुक्रम राशि $S, S_1, S_2, \ldots\ldots S_{n-1}$, को विभाजित किया जाता है, वरण सिद्धांत के द्वारा ज्ञात हो सकता है। इस उदाहरण में $x=4$.

चौथे अध्याय के श्लोक संख्या 54-55 में एक बहुत रोचक प्रश्न दिया गया है। "जंगल में काम कर रहे हाथियों की संख्या है : कुल हाथियों की संख्या के $\frac{2}{3}$ भाग के वर्गमूल के 9 गुणे और शेष हाथियों की संख्या के $\frac{3}{5}$ के वर्गमूल के 6 गुणे का योग। अब यदि इस संख्या में 24 और जोड़ा जाये तो हाथियों की कुल संख्या ज्ञात हो सकती है। वह संख्या क्या है ?

यदि मान लें कि हाथियों की कुल संख्या x हो तो चौथे घात का निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होता है :

$$9\sqrt{\frac{2}{3}\cdot}+6\sqrt{\frac{3}{5}\left(x-9\sqrt{\frac{2}{3}\ x}\right)}+24=x.$$

महावीराचार्य के अनुसार इसका हल निकालने के लिए दो द्विघात समीकरणों का आश्रय लेना पड़ता है।

यदि $y = x-9\sqrt{\frac{2}{3}}\ x$, हो तो द्विघात समीकरण होगा

$$y-6\sqrt{\frac{2}{3}\ y}=24.$$

$$y_1 = 60; \quad y_2 = \frac{48}{5}.$$

y_1 के मूल्य को पहले समीकरण में रखने पर निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होता है :

$$x-9\sqrt{\frac{2}{3}\ x}=60.$$

$$x_1 = 150; \ x_2 = 24.$$

द्विघात समीकरण,

$$x-9\sqrt{\frac{2}{3}\ x}=\frac{48}{5}$$

के पूर्ण मूल नहीं हैं। केवल $x = 150$ ही उपयुक्त है।

चौथे अध्याय के 56 वें श्लोक में दिया गया प्रश्न 8वें घात के समीकरण से हल होता है। "सुअरों की एक निश्चित संख्या—झुंड के $\frac{1}{2}$ भाग के वर्गमूल की चौगुनी—जंगल में है। झुंड का एक हिस्सा—शेष संख्या के $\frac{1}{10}$ भाग के वर्गमूल के दुगुने का 4 गुना—पहाड़ी पर है। दूसरे हिस्से के सुअर नदी की तरफ जा रहे हैं जिनकी संख्या है शेष के आधे के वर्गमूल का 9 गुणा। इसके अलावा झुंड में 56 सुअर और हैं। कुल कितने सुअर हैं ?"

सुअरों की कुल संख्या को x मानते हुए समीकरण बनेगा :

$$4\sqrt{\frac{x}{2}}+8\sqrt{\frac{1}{10}\left(x-4\sqrt{\frac{x}{2}}\right)}$$

$$+9\sqrt{\frac{1}{2}\left[x-4\sqrt{\frac{x}{2}}-8\sqrt{\frac{1}{10}\left(x-4\sqrt{\frac{x}{2}}\right)}\right]}+56=x.$$

महावीराचार्य के अनुसार, इस समीकरण का क्रमिक हल तीन द्विघात समीकरणों से निकलता है।

यदि $y = x-4\sqrt{\frac{x}{2}}$,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो, $y-8\sqrt{\frac{y}{10}}-9\sqrt{\frac{1}{2}\left(y-8\sqrt{\frac{y}{10}}\right)}=56.$

यदि $z=y-8\sqrt{\frac{4}{10}}.$

तो $z-9\sqrt{\frac{z}{2}}=56.$

अंत में x का मान निकला 200.

श्रेढ़ी

भारतीय गणित साहित्य में अंकगणित श्रेढ़ी और ज्यामिति श्रेढ़ी का प्रमुख स्थान रहा है। कुछ तरह के प्रश्न असाधारण तौर पर लोकप्रिय हुए; जैसे शतरंज के आविष्कार से संबंधित प्रश्न, जिससे कि ज्यामिति श्रेढ़ी के योगफल निकाले गये जिनमें हर का मान संख्या 2 था। यही नहीं, इस तरह के ज्यामिति श्रेढ़ी के योगफल निकालने संबंधी प्रश्नों का उल्लेख प्राचीन चीनी ग्रन्थ "गणित के नौ अध्याय" में भी है।

श्रेढ़ी का उल्लेख बहुत सी गणित की पुस्तकों तथा नक्षत्रविद्या के ग्रन्थों के गणित संबंधी अध्यायों में मिलता है। इन ग्रन्थों में कभी-कभी श्रेढ़ी के नियम और प्रश्न इतनी अधिक मात्रा में हो जाते थे कि उनके लिए "श्रेढ़ी व्यवहार" का एक विशेष खंड अलग से दिया जाता था।

अंकगणित श्रेढ़ी के प्रश्नों को हल करने के नियम महावीराचार्य के अनुसार इस प्रकार थे :—

$$a_1=\frac{S-\frac{(n-1)}{2}d.n}{n}, \qquad [9, II, 73]$$

$$a_1=\frac{S}{n}-\frac{n-1}{2}.d \qquad [9, II, 74]$$

$$a_1=\frac{\frac{2S}{n}-(n-1).d,}{2} \qquad [9, II, 76]$$

$$d=\frac{\frac{S}{n}-a}{\frac{n-1}{2}}=\frac{\frac{2S}{n}-2a}{n-1}. \qquad [9, II, 75]$$

अंकगणित श्रेढ़ी के योगफल और पदों की संख्या ज्ञात करने के नियम, जो उनसे पहले के गणितज्ञों ने बनाए थे, महावीराचार्य ने इस प्रकार दिये हैं :—

$$S=\left[\frac{n-1}{2}.d+a_1\right].n, \qquad [9, II, 61]$$

$$S=\frac{[(n-1).d+2a_1].n.}{2} \qquad [9, II, 62]$$

$$S=\left(\frac{a_1+a_n}{2}\right).n, \qquad [9, II, 64]$$

$$n=\frac{\sqrt{2dS+\left(\frac{d}{2}-a\right)^2}+\frac{d}{2}-a}{d}. \qquad [9, III, 33]$$

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निम्नलिखित नियम बहुत ही रोचक ढंग से बनाया गया है। किसी भी संख्या वाले अंकगणित श्रेढ़ी के पदों के पहले पद के लिए संख्या 1 ली जाती है। पहले पद से घटाई हुई पदों की संख्या को पदों की संख्या और 1 के अंतर के आधे से विभाजित करने पर जो संख्या प्राप्त होती है उसे श्रेढ़ी का अंतर मान सकते हैं। योगफल पदों की कुल संख्या के वर्ग के बराबर हुआ। यह संख्या, जिसे पदों की संख्या से गुणा किया जाता है, पदों की संख्या के घन के बराबर होती है। [9, 31C, 33]

स्पष्टतः यहाँ महावीराचार्य अंकगणित श्रेढ़ी की बात कर रहे हैं।

$$S=\sum_{k=1}^{n}(2k-1)=n^2,$$

$$S.\ n=n^2.\ n=n^3.$$

ज्यामिति श्रेढ़ी के नियम और प्रश्न आर्यभट्ट और ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थों में नहीं मिलते हैं। ज्यामिति श्रेढ़ी के योगफल और पद निकालने के नियम सबसे पहले महावीर ने दिये। उसके बाद श्रीधर और भास्कर द्वितीय ने इन्हें इस प्रकार प्रस्तुत किया :—

$$a_{n+1}=a.q^n$$

[9, II, 93]

$$S=\frac{aq^n-a}{q-1}.$$

महावीराचार्य के ग्रंथ में इन नियमों और उनके विविध प्रकारों के उदाहरण दिये गये हैं।

संचय विन्यास

छठे अध्याय के 218वें श्लोक में मिश्रित संख्याओं के संचय ज्ञात करने का सूत्र दिया गया है जो इस प्रकार है :—

$$C_n^m=\frac{n(n-1)\ (n-2)\ldots[n-(m-1)]}{1.2\ 3\ldots m}$$

इसी नियम के 3 उदाहरण हैं जिनमें से एक इस प्रकार है :—"हीरा, नीलम, पन्ना, मूंगा और मोतियों के विविध प्रकार के कितने हार बनेंगे ?" [9, VI, 220]

ऐसा ही सूत्र और ऐसे ही उदाहरण श्रीधर और नारायण ने भी दिये हैं।

संख्या श्रृंखलाओं का योगफल

छठे अध्याय में महावीर ने संख्या श्रृंखला के योगफल निकालने के कुछ नियम दिये हैं। प्राकृतिक संख्या श्रृंखला के वर्गों का योगफल इस प्रकार हुआ :—

$$\sum_{k=1}^{n}k^2=\frac{[2\ (n+1)^2-(n+1)]\frac{n}{2}}{3}$$

[9, IV, 296]

अंकगणित श्रेढ़ी के पदों के वर्गों का योगफल है :—

$$\sum_{k=1}^{n}[a+(k-1)\ d]^2=n\left\{\left[\frac{(2n-1)d^2}{6}+ad\right](n-1)\ +a^2\right\}$$

[9, VI, 298]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृतिक संख्या श्रृंखला के घनों का योगफल इस प्रकार है :—

$$\sum_{k=1}^{n} k^3 = \left(\frac{n}{2}\right)^2 (n+1)^2. \qquad [9, VI, 301]$$

अंकगणित श्रेढ़ी के पदों के घनों का योगफल है :—

$$\sum_{k=1}^{n} [a+(k-1)\,d\,]^3 = S\,a\cdot(a-d)+S^2\cdot d, \qquad [9, VI, 303]$$

इसमें S का मान इसी श्रेढ़ी के पदों का योगफल है।

पहली n प्राकृतिक संख्या श्रृंखला के वर्ग और घनों को निकालने की विधि का उल्लेख आर्यभट्ट प्रथम से लेकर नारायण आदि सभी भारतीय आचार्यों के ग्रंथों में मिलता है। यह विधियाँ बाबीलोन और मिस्र के निवासियों, यूनानियों और चीन के लोगों को भी ज्ञात थीं। बाद में इन विधियों का उल्लेख अरब और पश्चिम यूरोप के गणित साहित्य में भी मिलता है। यही नियम बाद में श्रीधर और नारायण के ग्रन्थों में भी मिलते हैं। [4, पृ० 233, 255]

संख्या सिद्धांत

भारतीय गणितज्ञों ने संपूर्ण धन संख्याओं की एल्गोरिथ्म विधि बनाई जिसका उद्देश्य पहले और दूसरे घात के अनिश्चित समीकरणों का हल निकालना था। महावीर के अनुसार संपूर्ण धन संख्याओं के अनिश्चित समीकरणों को हल करने का नियम इस प्रकार है :—

$$a\,x \pm C = b\,y \qquad [9, VII, 115\tfrac{1}{2}\ ,\ 136\tfrac{1}{2}]$$

हल निकालने की यह विधि आर्यभट्ट प्रथम, ब्रह्मगुप्त और भास्कर द्वितीय के नियमों पर आधारित है। यह विधियाँ विस्तारपूर्वक युश्क्येविच की पुस्तक में दी गई हैं। (1, पृ० 144-147)

सामान्य नियमों के अलावा महावीर ने कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में हल निकालने की विधि भी बताई।

"दो सोने की छड़ों में, जिनका भार क्रमश: 16 और 10 है, सोने की मात्रा अज्ञात है। लेकिन दोनों को मिला देने पर सोने की मात्रा 4 है। प्रत्येक छड़ में सोने की मात्रा क्या है ?" [9, VI, 188]

यह प्रश्न निम्नलिखित अनिश्चित समीकरण में बदला जा सकता है :—

$16x+10y=4\ (16+10)$

यहाँ x और y छड़ों में सोने की मात्रा है।

सामान्य समीकरण इस प्रकार हुआ,

$$ax+by=c\ (a+b)$$

या,

$$a(x-c)=b(c-y)$$

इनका हल है,

$$x = C \pm \frac{1}{a},$$

$$y = C \pm \frac{1}{b}.$$

इस समीकरण को हल करने का नियम इस प्रकार है :—

"सोने को दो अलग-अलग स्थानों पर रखें। छड़ों में सोने के ज्ञात भार को एक से विभाजित करके बारी-बारी से एक घटाने और एक जोड़ने पर सोने की मात्रा ज्ञात की जा सकती है।" इससे आगे महावीर लिखते हैं कि यदि स्वेच्छ संख्या को पहली छड़ में सोने की मात्रा मानें तो दूसरी छड़ में सोने की मात्रा पहले की तरह मालूम की जा सकती है। [9, VI, 189]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिशत, क्रय, विक्रय और कुछ दूसरी प्रकार के प्रश्नों के लिए अज्ञात पदों वाले रैखिक समीकरण प्रयोग में लाये जाते हैं। छठे अध्याय के 160 से 162वें श्लोकों में दिये गये प्रश्न से निम्नलिखित समीकरण बनता है :—

$x_1+x_2+x_3+x_4=\frac{a+b+c+d}{3}$. यहाँ a, b, c, d—ज्ञात राशियाँ हैं। महावीर के अनुसार इस प्रश्न का हल इस प्रकार है :—

$$x_1=\frac{a+b+c+d}{3}-a$$

$$x_2=\frac{a+b+c+d}{3}-b$$

$$x_3=\frac{a+b+c+d}{3}-c \qquad [9, \text{VII}, 159]$$

$$x_4=\frac{a+b+c+d}{3}-d$$

आर्यभट्ट प्रथम और नारायण द्वारा दिये गये हल भी ऐसे ही हैं। ईसा पूर्व प्रथम सहस्राब्दि के मध्य में लिखे गये "रज्जू नियमों" में समीकरण $x^2+y^2=z^2$ के परिमेय हल दिये गये हैं। संपूर्ण संख्याओं के हल सबसे पहले ब्रह्मगुप्त और फिर महावीर ने निकाले, जो इस प्रकार है :—

$p^2-q^2, 2pq, p^2+q^2$. यहाँ p,q स्वेच्छ संख्याएँ हैं जो कि प्राचीन यूनानियों के भी पहले ज्ञात थीं।

"दो और तीन तत्त्वों से एक आकृति बनाओ !" $[9, \text{VII}, 92\frac{1}{2}]$

समीकरण $x^2+a^2=z^3$ के परिमेय हल महावीर के अनुसार इस प्रकार हैं :—

$$a, \frac{1}{2}\left(\frac{a^2}{p^2}-p^2\right), \frac{1}{2}\left(\frac{a^2}{p^2}+p^2\right);$$

$$a, \frac{a^2}{4p^2}-p^2, \frac{a^2}{4p^2}+p^2 \qquad [9, \text{VI}, 95\frac{1}{2}, 97, \frac{1}{2}]$$

यहाँ p स्वेच्छ संख्या है।

समीकरण $x^2+y^2=c^2$ के परिमेय हल इस प्रकार हुए :—

$$p^2, \sqrt{c^2-p4,}\ c \qquad (9, \text{VII}, 95\frac{1}{2}, 97\frac{1}{2}]$$

$$p, \sqrt{c^2-p^2,}\ c.$$

चूंकि संख्या p का चुनना कठिन न था इसलिए महावीर ने एक और हल ढूंढ निकाला।

$$\frac{m^2-n^2}{m^2+n^2}.\ c, \quad \frac{2mn}{m^2+n^2}.\ c, c. \qquad [9, \text{VII}, 122\frac{1}{2}]$$

सातवें अध्याय के $112\frac{1}{2}$वें श्लोक में महावीर ने समीकरण प्रणाली

$$\begin{cases} x^2+y^2=z^2 \\ mx+ny+pz=rxy \end{cases}$$ को हल करने की विधि बताई। यहाँ $m, n, p, r(\neq 0)$ स्वेच्छ संख्याएँ हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि तीनों राशियाँ, जो कि $x_1^2+y_1^2=z_1^2$ समीकरण के उपयुक्त हों, तब समीकरण इस प्रकार होगा :—

$$mx_1+ny_1+pz_1=R$$

इस स्थिति में प्रणाली का हल इस प्रकार है :—

$$\begin{cases} x=x^1.\dfrac{R}{rx_1y_1}=\dfrac{R}{ry_1} \\ y=y_1.\dfrac{R}{rx_1y_1}=\dfrac{R}{rx_1} \\ z=z^1.\dfrac{R}{rx_1y_1}. \end{cases}$$

इसी विधि से महावीर निम्नलिखित प्रश्न हल करते हैं। "एक आयत का क्षेत्रफल उसके परिमाप के बराबर है। उसकी भजाओं का माप बताओ।" [9, VII, 115]

"एक आयत का क्षेत्रफल उसके विकर्णों के माप के बराबर है। उसकी भुजाएँ किसके बराबर हैं ?"

[9, VII, $115\frac{1}{2}$]

पहले प्रश्न में प्राप्त समीकरण प्रणाली इस प्रकार है :—

$$\begin{cases} x^2+y^2=z^2 \\ 2x+2y=xy, \end{cases}$$

दूसरे में,

$$\begin{cases} x^2+y^2=z^2 \\ z=xy \end{cases}$$

a^2-b^2, $2ab$, a^2+b^2 को पाइथेगोरस संख्याएँ मानते हुए पहली समीकरण प्रणाली का हल इस प्रकार होगा :—

$$\frac{2(a^2-b^2)+4ab}{2ab}, \quad \frac{2(a^2-b^2)+4ab}{a^2-b^2},$$

$$\frac{2(a^2-b^2)+4ab}{2ab(a^2-b^3)}.(a^2-b^2),$$

और दूसरी प्रणाली का हल,

$$\frac{a^2+b^2}{2ab}, \quad \frac{a^2+b^2}{a^2-b^2}, \quad \frac{(a^2+b^2)}{2ab(a^2-b^2)}$$

महावीर, भास्कर द्वितीय और नारायण ने कई उदाहरण दिये हैं जो कि तीसरे घात के अनिश्चित समीकरण बनाते हैं। उदाहरण के लिए, महावीर के अनुसार अंकगणित श्रेढ़ी के योगफल से पहले पद, पदों की संख्या और श्रेढ़ी का अंतर ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रश्न का हल 3 अज्ञात राशियों वाले अनिश्चित समीकरणों से प्राप्त होगा।

$$S=\left[a+\frac{d(n-1)}{2}\right].n.$$

हल करने का नियम इस प्रकार है :—

योगफल को उसके किसी भी भाजक से, जो कि पदों की संख्या होगा, विभाजित करो। स्वेच्छ संख्या को भागफल से घटाओ, घटाने पर जो संख्या आएगी वह पहला पद होगी। प्राप्त अंतर कुल पदों की संख्या के आधे से विभाजित, जो कि 1 से घटाया गया हो, श्रेढ़ी का अंतर कहलाता है। [9, VII, 78]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्रफल का माप

ज्यामिति के अध्याय के आरंभ में महावीर लिखते हैं कि क्षेत्रफल का माप दो प्रकार का होना चाहिए—व्यावहारिक आवश्यकताओं के लिए सन्निकट माप और यथार्थ माप।

गणित में पारंगत विद्वान् कई प्रकार की आकृतियों से परिचित हैं जिनमें त्रिकोण, चतुर्भुज और वक्र रेखाओं से बनी आकृतियाँ शामिल हैं। [9, VII, 2-3]

इसके बाद आकृतियों के प्रकार का बिवरण दिया गया है जैसे, त्रिकोण तीन प्रकार के होते हैं, चतुर्भुज 5 प्रकार के और वक्र रेखाओं से बनी आकृतियाँ 8 प्रकार की होती हैं। बाकी सभी आकृतियाँ इन्हीं आकृतियों से बनती हैं। गणितज्ञों के अनुसार त्रिकोण तीन प्रकार के होते हैं—समबाहु, समद्विबाहु और विषमबाहु। चतुर्भुज समबाहु, दो बराबर भुजाओं वाले, दो विपरीत बराबर भुजाओं वाले, तीन बराबर भुजाओं वाले और विषमबाहु होते हैं। वृत्त, अर्धवृत्त, आयतवृत्त, कम्बुकावृत्त, निम्नवृत्त, उन्नतवृत्त, बाह्य वलय और भीतरी वलय—यह वक्र रेखाओं से बनी आकृतियों के प्रकार हैं। [9, VII, 4—6]

इसके बाद महावीर ने प्रत्येक सन्निकट और यथार्थ आकृतियों के लिए सूत्र बनाए।

त्रिकोण और चतुर्भुज के सन्निकट क्षेत्रफल ज्ञात करने का नियम इस प्रकार है—"विपरीत भुजाओं के योगफल के आधे का गुणनफल, त्रिकोण और चतुर्भुज के क्षेत्रफल के बराबर होता है। [9, VII, 7]

ब्रह्मगुप्त ने त्रिकोण और चतुर्भुज के क्षेत्रफल ज्ञात करने के लिए सन्निकट सूत्र बनाये जो क्रमशः इस प्रकार हैं :—

$$S = \frac{a}{2} \cdot \frac{b+c}{2}$$

और,
$$S = \frac{a+c}{2} \cdot \frac{b+d}{2}$$

चतुर्भुज का सन्निकट क्षेत्रफल ज्ञात करने का सूत्र मिस्र के विद्वानों को भी ज्ञात था।

इसी सूत्र के लिए महावीर ने 11 उदाहरण दिये हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

"एक त्रिभुज की पार्श्व भुजा, विपरीत भुजा और आधार का माप है 8 दंड। बताओ उसका सन्निकट क्षेत्रफल क्या है ?" [9, VII, 8]

"दो समान भुजाओं वाले एक त्रिभुज की समान भुजाओं की लंबाई है 77 दंड। आधार की लंबाई है 22 दंड और 2 हस्त। त्रिभुज का क्षेत्रफल क्या है ?" [9, VII, 9]

"3 समान भुजाओं वाले एक चतुर्भुज की प्रत्येक समान भुजा का माप 100 दंड है, आधार का माप है 8 दंड और 3 हस्त। चतुर्भुज का क्षेत्रफल बताओ।" [9, VII, 15]

चतुर्भुज का यथार्थ क्षेत्रफल है,

$$S = \sqrt{(p-a)(p-b)(p-c)(p-d)},$$

$$S = h \cdot \frac{a+c}{2}. \qquad [9, VII, 50]$$

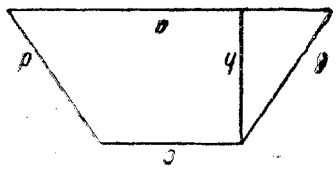

चित्र : 1

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर कहते हैं कि यदि चतुर्भुज विषमबाहु है तब दूसरे सूत्र का उपयोग नहीं किया जा सकता। पहला सूत्र ब्रह्मगुप्त और श्रीधर ने दिया। [4, पृ० 239]

छठे अध्याय के 84वें श्लोक में चतुर्भुज के विकर्ण निकालने के सूत्र दिये गये हैं।

$$\text{विकर्ण} = \sqrt{\frac{(ac+bd)(ab+cd)}{ad+bc}}$$

$$\text{विकर्ण} = \sqrt{\frac{(ac+bd)(ad+bc)}{ab+cd}} \qquad [9, \text{VII}, 54]$$

यह सभी सूत्र चक्रीय चतुर्भुजों के लिए उपयुक्त हैं। इन सूत्रों को समझने के लिए निम्नलिखित उदाहरण दिये गये हैं :

"एक समान भुजाओं वाले चतुर्भुज की भुजाओं का माप 5 है। बताओ कि विकर्ण का माप और यथार्थ क्षेत्रफल क्या है ?" [9, VII, 55]

"तीन समान भुजाओं वाले एक चतुर्भुज की प्रत्येक भुजा का माप है 13 का वर्ग, और आधार 407 है। विकर्ण, ऊँचाई और क्षेत्रफल बताओ।" [9, VII, 58]

"एक वृत्त की परिधि का माप उसके व्यास का 3 गुना है। उसके अर्धव्यास के वर्ग का तिगुना वृत्त का क्षेत्रफल है। गणितज्ञों के अनुसार अर्धवृत्त का क्षेत्रफल और अर्धपरिधि का माप उपर्युक्त परिणामों का आधा होता है।" [9, VII, 19]

इस तरह,

$$l = 3d, \quad S = \frac{3d^2}{4},$$

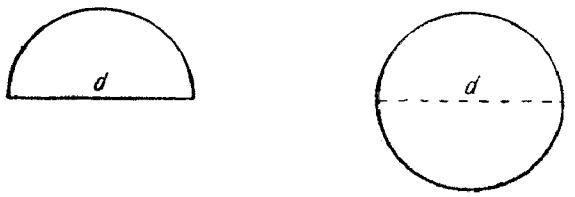

चित्र : 2

यहां $\pi \approx 3$ है। यदि $\pi \approx \sqrt{10}$ हो तो महावीर सही सूत्र इस तरह बताते हैं :—

$$l = \sqrt{10d^2}, S = \sqrt{10\left(\frac{d}{2}\right)^4} \qquad [9, \text{VII}, 60]$$

बहुत-से उदाहरण इन्हीं सूत्रों से हल किये जाते हैं। आयतवृत्त का परिमाप और क्षेत्रफल निकालने का नियम इस प्रकार है :—लघुव्यास के आधे से बढ़ाया हुआ और 2 से गुणा किया हुआ दीर्घव्यास ही आयतवृत्त का परिमाप होता है। परिमाप से गुणा किया हुआ लघुव्यास का चौथा भाग आयतवृत्त का क्षेत्रफल होता है। [9, VII, 21]

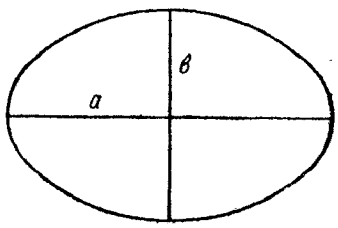

चित्र : 3

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीर्घव्यास को a और लघुव्यास को b मानते हुए महावीर के अनुसार परिमाप हुआ $2a+b$, और आयतवृत्त का क्षेत्रफल होगा

$$S = \frac{b}{4}(2a+b)$$

परिमाप और क्षेत्रफल निकालने के सही सूत्र निम्नलिखित नियम से प्राप्त किये जा सकते हैं :—

"लघुव्यास के वर्ग के छः गुने और दीर्घव्यास के वर्ग के दुगुने को जोड़ो। इसका वर्गमूल वृत्त के परिमाप के बराबर हुआ। परिमाप को लघुव्यास के चौथे भाग से गुणा करने पर आयतवृत्त का सही क्षेत्रफल निकाला जा सकता है। [9, VII, 63]

$$l = \sqrt{6b^2+4a^2}$$

$$S = \frac{b}{4}\sqrt{6b^2+4a^2}$$

यह स्पष्ट है कि आयतवृत्त का क्षेत्रफल निकालने का सूत्र वृत्त के क्षेत्रफल निकालने के सूत्र से ही बना है।

$$S = \frac{d}{4}\, l,$$

वृत्त की परिधि और आयतवृत्त की परिधि निकालने के सूत्रों में भी साम्य है।

$$l = \sqrt{10d^2} = \sqrt{6d^2+4d^2}.$$

महावीर निम्नलिखित उदाहरण देते हैं :—

"एक आयतवृत्त के दीर्घव्यास की लंबाई है 36 और लघुव्यास की लंबाई 12 है। उसका परिमाप और क्षेत्रफल बताओ।"
[9, VII, 64]

म० रंगाचार्य [9] और उनके बाद जी० सारटोन [8, खंड 1, पृष्ठ 570] के अनुसार एक आयतवृत्त दीर्घवृत्त ही होता है। इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं हुआ जा सकता है।

सीप के आकार की आकृति (कम्बुकावृत्त) का, जो कि दो जुड़े हुए विभिन्न व्यास वाले अर्धवृत्तों से बनती है, सन्निकट परिमाप और क्षेत्रफल वृत्त के लिए बने नियमों से निकाले जा सकते हैं।

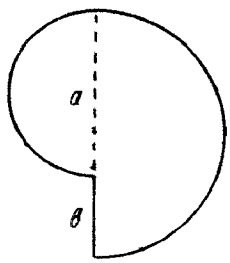

चित्र : 4

"अधिकतम चौड़ाई से सीप के मुंह की चौड़ाई का आधा घटाने पर और 3 से गुणा करने पर आकृति का परिमाप ज्ञात होता है। इस परिमाप के आधे के वर्ग के एक तिहाई को यदि सीप के मुंह की चौड़ाई के आधे के वर्ग के $\frac{3}{4}$ से गुणा किया जाय तो सीप का क्षेत्रफल ज्ञात होगा।" [9, VII, 23]

अधिकतम चौड़ाई अर्थात् दीर्घवृत्त के व्यास को a और सीप के मुंह की चौड़ाई को b मानते हुए परिमाप होगा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

$$l = 3\left(a - \frac{1}{2}b\right),$$

और क्षेत्रफल,

$$S = \frac{1}{3}\left[\frac{3\left(a - \frac{1}{2}b\right)^2}{2}\right] \frac{3}{4}\left(\frac{b}{2}\right)^2$$

इस सूत्र के लिए निम्नलिखित उदाहरण दिया गया है :

'सीप के दीर्घव्यास का माप है 18 हस्त और सीप के मुंह की चौड़ाई है 4 हस्त। उसका परिमाप और क्षेत्रफल बताओ।"

[9, VII, 24]

यदि $\pi \simeq \sqrt{10}$ हो तो सही सूत्र इस प्रकार होगा,

$$l = \left(a - \frac{1}{2}b\right)\sqrt{10}$$

$$S = \left[\left(\frac{a - \frac{1}{2}b}{2}\right)^2 + \left(\frac{b}{4}\right)^2\right]\sqrt{10}$$

[9, VII, $65\frac{1}{2}$]

निम्न और उन्नत वृत्त की सतह (जैसे कि यज्ञ-कुण्ड और कछुए की पीठ की सतह होती है) का क्षेत्रफल निकालने का सूत्र है :—"परिधि के एक चौथाई को यदि व्यास से गुणा किया जाये तो निम्न और उन्नत वृत्त की सतह का क्षेत्रफल ज्ञात होता है।"

[9,VII,25]

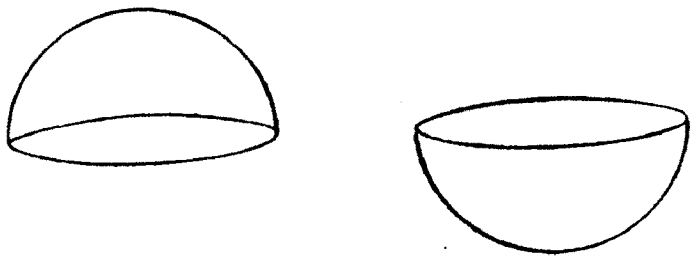

चित्र : 5

$$S = \frac{l}{4}d$$

यह सूत्र आयत या चपटे गोलार्ध के लिए है क्योंकि सामान्य गोलार्ध का क्षेत्रफल होगा

$$S = \frac{l}{2}d$$

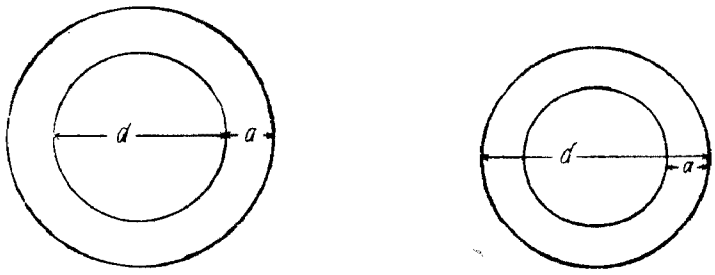

चित्र : 6

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीतरी और बाहरी वलय के क्षेत्रफल इस प्रकार होंगे :—"भीतरी व्यास को वलय की चौड़ाई से जोड़ने पर और फिर 3 तथा वलय की चौड़ाई से गुणा करने पर बाहरी वलय का क्षेत्रफल ज्ञात होता है। यदि व्यास से वलय की चौड़ाई को जोड़ने की बजाय घटाया जाए तो भीतरी वलय का क्षेत्रफल प्राप्त होगा।" [9, VII, 28]

$$S_{\text{बाहरी}} = 3\ (d + a)\ a$$

$$S_{\text{भीतरी}} = 3\ (d - a)\ a$$

यहाँ d = व्यास, a = वलय की चौड़ाई और $\pi \simeq 3$ है। यदि $\pi \simeq \sqrt{10}$ हो तो यथार्थ क्षेत्रफल ज्ञात किया जा सकता है।

[9. VII, 67 $\frac{1}{2}$].

जौ, मुरज, पणव और वज्र की तरह की आकृतियों का क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिए उनके मध्य भाग की चौड़ाई और किनारों से ली गई चौड़ाई के योग के आधे को लंबाई से गुणा किया जाता है। [9, VII, 32]

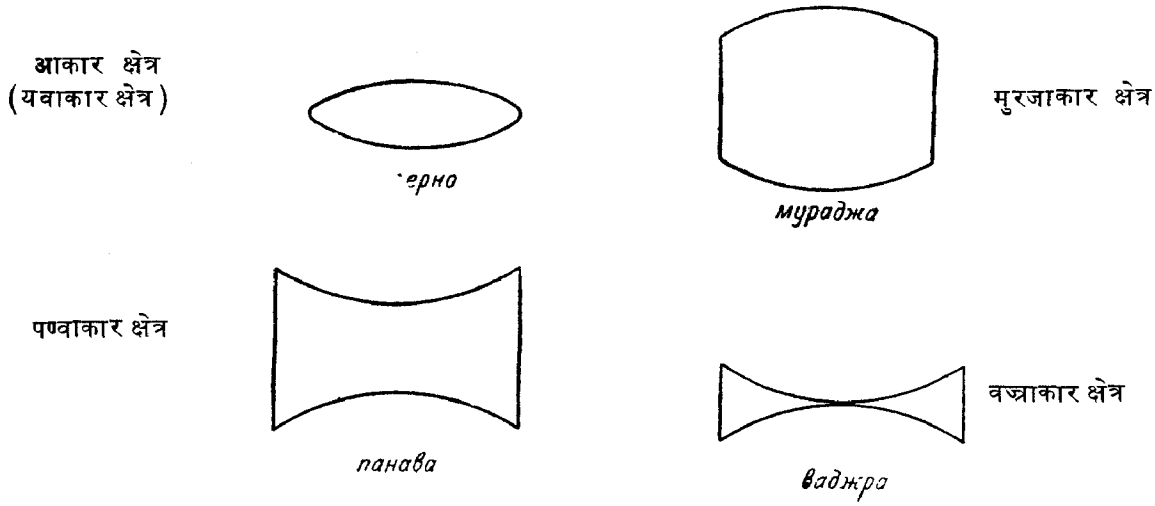

चित्र : 7

यदि a_1 = आकृति के मध्य की चौड़ाई, a_2 = एक किनारे से ली गई चौड़ाई और b = लंबाई हो तो

$$S = \frac{a_1 + b_2}{2}.b,$$

अर्थात् सभी आकृतियाँ आयताकार रूप में बदल दी जाती हैं जिनमें प्रत्येक की औसत चौड़ाई और आरंभिक लंबाई ली जाती है।

यह नियम और चतुर्भुज का क्षेत्रफल ज्ञात करने के नियम में परस्पर संबंध है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह दोनों ही नियम समान परिस्थितियों में बनाये गये हैं। श्रीधर कृत "पतिगणित" के एक अज्ञात टीकाकार ने वज्र के आकार की आकृति को दो बराबर समलंबों के रूप में दिखाया है जो कि एक दूसरे के साथ निम्नतम आधारों के द्वारा जुड़े हैं। [4, पृष्ठ 238].

चार उदाहरण इसी नियम के लिए दिये गये हैं। "जौ के आकार की आकृति की लंबाई है 80, और मध्य भाग की चौड़ाई 40 है। जौ का क्षेत्रफल क्या होगा ?" [9, VII, 33]

"मुरज के आकार की आकृति का क्षेत्रफल बताओ यदि उसकी लंबाई 80 दंड, किनारों से ली गई चौड़ाई 20 दंड और मध्य भाग की चौड़ाई 40 दंड हो।" [9, VII, 34].

"पणव के आकार की आकृति का क्षेत्रफल क्या होगा यदि उसकी लंबाई है 77 दंड, दो किनारों में से प्रत्येक से ली गई चौड़ाई हो 8-8 दंड, और मध्य भाग की चौड़ाई हो 4 दंड।" [9, VII, 35]

"यदि वज्र के आकार की आकृति की लंबाई है 96 दंड, मध्य भाग सुई की नोक के बराबर है और किनारों से ली गई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौड़ाई है 13 $\frac{1}{3}$ दंड तो उसका क्षेत्रफल बताओ ।" [9, VII, 36]

"धनुष के समान आकृति का क्षेत्रफल बाण और प्रत्यंचा की लंबाई को जोड़ने और फिर बाण की लंबाई के आधे से गुणा करने पर प्राप्त होता है। बाण की लंबाई के वर्गमूल के पाँच गुने में प्रत्यंचा की लंबाई के वर्ग को जोड़ने से धनुष की लंबाई पता चलती है।" [9, VII, 43]

इस सूत्र में वृत्त खंड और इसी वृत्तखंड से प्राप्त जीवा की लंबाई प्राप्त करने के सन्निकट सूत्र दिये हुए हैं जहां धनुष, प्रत्यंचा, बाण क्रमशः वृत्त के चाप, जीवा और व्यास के खंड हैं। व्यास का यह खंड वृत्तखंड के भीतर होता है और जीवा पर लंब होता है।

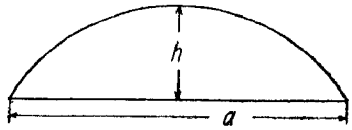

चित्र : 8

"धनुष और प्रत्यंचा की लंबाई के वर्गों का अंतर पाँच से विभाजित करने पर और फिर इसका वर्गमूल निकालने पर बाण की लंबाई ज्ञात करने के लिए बाण की लंबाई के वर्ग को 5 से गुणा करके, धनुष की लंबाई के वर्ग से घटाओ और फिर इस अंतर का वर्गमूल निकालो।" [9, VII, 45

$$S_{\text{वृत्त खंड}} = (a+h)\cdot\frac{h}{2},$$

$$l = \sqrt{Sh^2 + a^2},$$

$$h = \sqrt{\frac{l^2 - a^2}{5}},$$

$$a = \sqrt{l^2 - 5h^2},$$

l, a, h क्रमशः चाप, जीवा और व्यास का खंड हैं।

इन सूत्रों से निम्नलिखित प्रश्न हल किये जा सकते हैं,

"धनुष के समान आकृति में प्रत्यंचा की लंबाई है 26 और बाण की लंबाई 13 है। क्षेत्रफल और धनुष की लंबाई बताओ।" [9, VII, 44].

"यदि इसी धनुष के बाण की लंबाई अथवा प्रत्यंचा की लंबाई अज्ञात हो तो दोनों का मान बताओ।" [9, VII, 46]

सही सूत्र इस प्रकार होंगे,

$$l = \sqrt{6h^2 + a^2},$$

$$h = \frac{\sqrt{l^2 - a^2}}{6}, \qquad [9, \text{VII}, 70\tfrac{1}{2}, \quad 73\tfrac{1}{2}, \quad 74\tfrac{1}{2}]$$

$$a = \sqrt{l^2 - 6h^2},$$

$$S_{\text{वृतखंड}} = \frac{a.h}{4}\sqrt{10}$$

"पहिए के रिम की जैसी आकृति का क्षेत्रफल भीतरी और बाहरी परिधि के जोड़ के आधे को पहिए की चौड़ाई से गुणा करने पर ज्ञात होता है। इसका आधा अर्धचंद्र आकृतियों का क्षेत्रफल होगा।" [9, VII, $7\frac{1}{2}$].

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

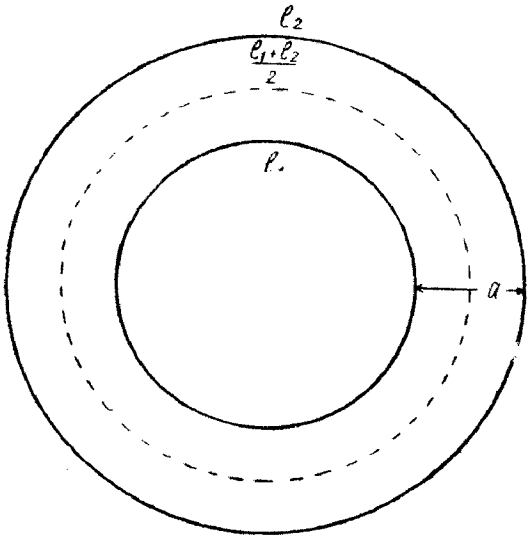

चित्र : 9

यदि l_1, l_2 और a क्रमशः भीतरी परिधि, बाहरी परिधि और पहिए की चौड़ाई हों तो क्षेत्रफल होगा,

$$S = \frac{l_1+l_2}{2} .a.$$

महावीर सही क्षेत्रफल दूसरी तरह से प्राप्त करते हैं। [9, VII, $80\frac{1}{2}$]

$$S = \frac{l_1+l_2}{6}\ a\ \sqrt{10}.$$

यदि $l=3d$ हो तो ऊपर दिया गया सूत्र आसानी से समझा जा सकता है।

"एक वृत्त का क्षेत्रफल व्यास के वर्ग से घटाने पर उस आकृति का क्षेत्रफल प्राप्त होता है जो कि चार बराबर परस्पर सटे हुए वृत्तों के भीतरी भाग में बनती है। [9, VII, $82\frac{1}{2}$]

इस तरह, यदि d = व्यास हो तो वक्र आकृति $ABCD$ का क्षेत्रफल होगा,

$$d^2 - \pi\frac{d^2}{4}.$$

वास्तव में, d^2 = वर्ग $EFGH$ का क्षेत्रफल है, $d^2 - \pi\frac{d^2}{4}$ = 4 बराबर वक्र आकृतियों (AEB, BFC, CGD,DHA) का क्षेत्रफल है। यह आकृतियाँ क्रमशः AOB, BOC, COD और DOA के बराबर हैं अर्थात् यह क्षेत्रफल उन चार बराबर परिधियों वाली भीतर बनी आकृतियों का है जो एक दूसरे को छू रही हैं।

निम्नलिखित उदाहरण इस सूत्र से हल किया जाता है :

"यदि वृत्तों का व्यास 4 हो तो चार समान परस्पर सटे हुए वृत्तों के बीच के भाग की आकृति का क्षेत्रफल बताओ।"

[9, VII, $83\frac{1}{2}$]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

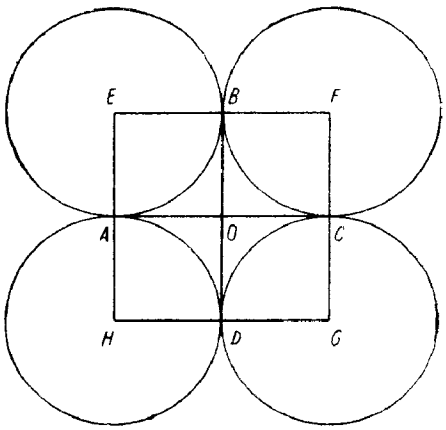

चित्र : 10

महावीर के ग्रन्थ के आठवें खंड में परम्परा से चली आ रही भारतीयों की गणना करने की कला का विवरण है जो कि कई कार्यों से संबंधित हैं, जैसे कुआँ खोदना, लकड़ी की चिराई, शहतीरों के ढेर में उनकी कुल संख्या ज्ञात करना, आदि। इसी संदर्भ में प्रिज्म और गोले के आयतनों का भी उल्लेख किया गया है। प्रिज्म के आकार में खोदे गये एक गड्ढे का आयतन उसके आधार के क्षेत्रफल को गहराई से गुणा करने पर प्राप्त होगा। चोटी से आधार तक की ऊँचाई को इस आयतन में जोड़ने पर और उसे मापों की संख्या से विभाजित करने पर प्रिज्म के आयतन का औसत मान प्राप्त होता है। [9, VIII, 4].

इसी सूत्र से हल होने वाले चार प्रश्नों में से एक निम्नलिखित है। "एक गड्ढे के आधार का आकार त्रिकोण है। इस त्रिकोण की प्रत्येक भुजा का माप 32 हस्त और गहराई 36 हस्त और 6 अंगुल है। आकृति का आयतन बताओ। [9, VIII, 6]

गोले का आयतन निम्नलिखित सूत्र से निकाला जा सकता है। अर्धव्यास के घन के आधे को 9 से गुणा करने पर गोले का सन्निकट आयतन प्राप्त होता है। इस प्राप्त संख्या को 9 से गुणा करने पर और 10 से विभाजित करने पर गोले का यथार्थ आयतन प्राप्त होता है। $\left[9, \text{VIII } 88\frac{1}{2}\right]$ इस तरह गोले का सन्निकट आयतन होगा,

$$V = \frac{9}{2} \cdot \left(\frac{d}{2}\right)^3,$$

और यथार्थ आयतन :

$$V = \frac{81}{20} \cdot \left(\frac{d}{2}\right)^3$$

महावीर का सूत्र भास्कर द्वारा लिखे गये सूत्र की अपेक्षा इस सही हल से अधिक मिलता है.

$$V = \frac{a}{2} R^3$$

लेकिन श्रीधर के सूत्र से अधिक सही हल निकाला जा सकता है—

$$V = 4R^3 \left(1 + \frac{1}{18}\right)$$ [4, पृष्ठ 154].

उपसंहार

भारतीय गणित में महावीर का क्या स्थान है ? जैसे कि पहले ज्ञात हो चुका है कि महावीर का ग्रन्थ उससे पहले की नक्षत्र विद्या संबंधी कृतियों में लिखे गए गणित के खण्डों से बड़ा है। ऐसा संभव है कि महावीर के ग्रन्थ में दी गई बहुत सी बातें आर्यभट्ट प्रथम, ब्रह्मगुप्त और भास्कर प्रथम को ज्ञात थीं। परन्तु बहुत से नियमों की रचना और उनके उदाहरणों की जानकारी हमें महावीर द्वारा प्राप्त होती है।

"गणितसारसंग्रह" पहला ग्रंथ है जिसमें निम्नलिखित नियम दिये गए हैं :—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभाजन के नियम

संख्या को वर्ग और घन में बदलने की विशिष्ट परिस्थितियाँ,

भिन्न के घन और घनमूलों को प्राप्त करने की विधि,

अनुपात के नियम, और

प्रतिशत और सोने की शुद्धता ज्ञात करने के नियम ।

महावीर उन आरंभिक गणितज्ञों में से हैं जिन्होंने दो अज्ञात राशि वाली दो रैखिक समीकरणों की प्रणाली, अनिश्चित रैखिक समीकरणों की प्रणाली, और दूसरे घात की अनिश्चित समीकरण प्रणाली को हल करने के नियम बनाए। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई अज्ञात राशि वाले रैखिक समीकरणों को हल करने की मौलिक विधियाँ, चौथे और आठवें घात के समीकरणों के मूल निकालने की विधि, अंकगणित श्रेढ़ी के पहले पद और श्रेढ़ी का अंतर ज्ञात करने की विधि और ज्यामिति श्रेढ़ी के किसी भी पद और योगफल को प्राप्त करने की विधि भी बनाई।

भारतीय गणित के इतिहास में महावीर ने सबसे पहले बताया कि लघुत्तम समान गुणज क्या है। महावीर ने ही धन संख्याओं के वर्गमूलों के दोहरे अर्थ बताए और यह भी बताया कि ऋण संख्याओं के वर्गमूल नहीं प्राप्त किए जा सकते हैं।

महावीर और उनके बाद के गणितज्ञों के ग्रंथों में गहरा संबंध है। विशेषकर श्रीधर पर महावीर का बहुत प्रभाव है। श्रीधर ने "गणितसारसंग्रह" से कई नियम और प्रश्न लिए हैं। वैसे ही प्रश्न और नियम आर्यभट्ट प्रथम, श्रीपति, भास्कर द्वितीय और नारायण के ग्रन्थों में भी मिलते हैं। सातवीं-नवीं शताब्दी में ब्रह्मगुप्त के बाद महावीर के शिष्यों ने जो काम किया वह अभी तक अज्ञात है।

रूसी से अनुवाद—सुश्री मंजरी सहाय

अनुवाद संशोधन—प्रो० हेमचंद पांडे

— ९ —

संदर्भ साहित्य

१. अ० प० युश्क्येविच, इस्तोरिया मातेमातिकी व सरयेदनिये वेका, मास्को, १९६१.

२. द० या० स्त्रोइक, क्रात्की ओचेर्क इस्तोरी मातेमातिकी, इ० ब० पोग्रेविस्स्की द्वारा जर्मन से अनूदित और संवर्द्धित, मास्को, १९६४.

३. क० अ० रिब्निकोव, इस्तोरिया मातेमातिकी, खण्ड १, मास्को, १९६०.

४. श्रीधर, पतिगणित, ग्रो० फ० वोल्कोवा तथा अ० इ० बोलोदारुस्की द्वारा संस्कृत से अनूदित, अ० इ० बोलोदारुस्की द्वारा परिचयात्मक लेख और टिप्पणियां
"फीज़िको—मतेमातीचेस्किये नऊकि व स्त्रानाख़ वोस्तोका" १९६६, विपु०, I (IV), पृ० १४१-२४६.

५. अ० प० युश्क्येविच और ब० अ० रोजेन्फ्येल्द, मातेमातिका व स्त्रानाख़ वोस्तोका व सरयेदनिये वेका—"ईज इस्तोरी नऊकि इ तेख्निकि व स्त्रानाख़ वोस्तोका," १९६०, विपु० I, पृ० ३४९-४२१.

६. B. Datta, A.N. Singh, *History of Hindu Mathematics*, Vol. 1—2, Bombay, 1962.

७. D.E. Smith, *History of Mathematics*, Vol. 1—2, Boston—London, 1930.

८. G. Sarton, *Introduction to the History of Science*, Vol. 1—3, Baltimore, 1927—1947.

९. M. Rangācārya, *The Gaṇita-Sāra-Sangraha of Mahāvīrācārya*, Ed. with English translation and notes, Madras, 1912.

१०. W.E. Clark, *The Āryabhatiya of Āryabhata*, An Ancient Indian Work on Mathematics and Astronomic, Chicago, 1930.

११. "*Algebra with Arithmatics and Mensuration from the Sanskrit of Brahmagupta and Bhascara*" Translated by H.T. Colebrooke, London, 1817.

१२. "*The Mahā-Bhāskarīya by Bhāskara I*" Ed. and translated into English with notes and comments by K.S. Shukla, Lucknow, 1960.

१३. "*The Mahā-Siddhānta by Āryabhata II*", Ed. with explanatory notes by Sudhakara Dwivedi, Benaras, 1910:

१४. "*The Gaṇita-tilaka by Śripati*", Ed. with comment of Simhatilaka Suri by H.R. Kapadia, Baroda, 1935.

१५. "*The Gaṇita-Kaumudi by Nārāyaṇa*", Pt. 1, Ed. by Padmakara Dwvedi Jyautishacharya, Benaras, 1936.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Sumatiharṣa Gaṇi and Some Other Jaina Jvotisis

—Prof. David Pingree

Sumatiharṣa Gaṇi was a member of the Añcalagaccha[1] who flourished in Rajasthan in the early seventeeth century. Between about 1610 and 1621 he composed commentaries on a number of jyotiṣa texts; in this paper, which is based on the information given at the beginning and end of the surviving commentaries, on a perusal of those manuscripts presently accessible to me, and on the colophons, an attempt is made to elucidate the history of his life and to establish his relationships to other members of the Añcalagaccha.

His surviving works are the following :

I. A vṛitti on the *Vivāhapaṭala* composed by Brahmārka or Brahmāditya of the Vālalya family before 1605, the date of the oldest known manuscript;[2] this Brahmāditya may be identical with the author of the *Praśnajñāna*, also named Brahmārka or Brahmāditya, who was the son of Mokṣeśvara and the grandson of Jyotiḥsūdana;[3] he belonged to the Bālambha (read Bālalya ?) family. For the *Vivāhapatalavṛtti* I have used the fragmentary manuscript at Harvard, Sanskrit 405, which consists of ff. 5-16 and 18-19 containing I 14-III 41 and III 45-V 10. The colophons to this manuscript, which begin : ity āṃcalikamahopādhyāyaśrī 5 śrīharṣaratnagaṇīnāṃ śiṣyapaṃḍitavādirājasumatiharṣaratnagaṇiviracitāyāṃ, inform us of the fact that Sumatiharṣa's teacher was the obscure Mahopādhyāya Harṣaratna Gaṇi. The only indication of a date in this manuscript is a horoscope which can be dated 5 October 1576 and provides an early terminus post quem; one wonders if it is the horoscope of Sumatiharṣa himself (it is entitled simply śrījanmalagnam).

Planets	*Text* (*sidereal*)	*Computation* (*tropical*)
Saturn	Sagittarius	Sagittarius 26°
Jupiter	Leo	Virgo 6°
Mars	Capricorn	Aquarius 7°
Sun	Libra	Libra 22°
Venus	Libra	Libra 25°
Mercury	Libra	Libra 25°
Moon	Pisces	Pisces 27°
Node	Aries	Aries 30°

1. This gaccha, founded in 1166, had branches at Jaisalmer, Udayapura, Jīrāualā in Sīrohī, and Nagara in Marwar, as well as at other localities in Rajasthan; see K.C. Jain, *Jainism in Rajasthan*, Sholapur 1963, p. 59.
2. D. Pingree, *Census of the Exact Sciences in Sanskrit* (henceforth *CESS*), Philadelphia 1970 and following, A4, 261b.
3. *CESS*, A4, 261b-262b.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Note that the ayanāṃśa in 1576 was about 14°, which places all of the tropical longitudes within the sidereal longitudes indicated in the text.

II. The *Subodhā*, a vṛtti on the *Jātakakarmapaddhati* composed by Śrīpati in about 1050.[1] The final verses are edited below on the authority of manuscripts in this British Library (Or. 5208) and in the LD Institute (2538) :

śrīmadañcalagaṇo'sti vivekacchedako bhuvi munīśasarojaḥ ।
mānasaḥ pravitatāgamapakṣo dūrato gatakubodhavipakṣaḥ ॥
jayanti hi cidānandā mahānandapradāyinaḥ ।
śrīmanto 'traikakaiyāṇasāgarā mānasaukasaḥ ॥
āsaṃś ca tacchāsanakāriṇo budhāḥ
śrīharṣaratnābhidhapāṭhakottamāḥ ।
siddhāntapāṭīgaṇitādikāgama-
jñānapraviṇā viditā yaśasvinaḥ ॥
siddhāntabrahmatulyādigrahasādhanahetave ।
sukhopāyaḥ kṛto yaiḥ suśiṣyāṇām anukampayā ॥
tacchiṣyeṇa vinirmame sumatiyuggharṣeṇa satpaddhateḥ
vṛttair daivavidāṃ sukhārthajananī śrīmadguror bhāvataḥ ।
śrīmatpārśvaśivaprasattinibhṛtā padmāvatī pattane
varṣe rāmamunīśaṣoḍaśamite śubhre 'śvaṣaṣṭhīdine ॥

These verses begin by extolling the Añcalagaccha and its leader, the well-known and prolific author, Kalyāṇasāgara Sūri, one of whose patrons was Bhoja, Mahārāja of Kaccha from 1631 to 1645.[2] There still survive a number of manuscripts copied during his spiritual rule of the Añcalagaccha, which I list below in chronological order. Praśāsti refers to Amṛtalāla Maganalāla Śāha, *Śrīpraśastisaṅgraha*, Ahmedabad 1936, Vol. 2.

1. Praśasti p. 173 no. 690. *Śāntināthacaritra.* Copied for Māṇikyalābha, pupil of Jayalābha Gaṇi, pupil of Gajalābha Gaṇi, on Thursday 7 November 1611 during rule of Kalyāṇasāgara.

2. LDI 2631. *Puṇyapālakathānaka.* Copied by Kalyāṇasāgara's pupil, Matinidhāna, in 1614.

3. Berlin or. fol. 2591.[3] *Caṃdapannatti.* Copied by Rājasīka, a resident of Navyanagara, at the command of Kalyāṇasāgara on 21 February 1620.

4. LDI 5692. *Jyotiṣaratnamālā* of Śrīpati. Copied by Jñānśekhara, the pupil of Kalyāṇasāgara's pupil, Saubhāgyasāgara Sūri, at Bhujadraṅga in 1620.

5. Praśasti p. 187 no. 745. *Daśavaikālikasūtra.* Copied for Sāṅgāka, a resident of Bhujanagara, in 1621 during the reign of Kalyāṇasāgara.

6. Praśasti p. 188 no. 748. *Siṃhāsanadvātrimśikā.* Copied by Jñānasāgara, pupil of Vīracandra, at Māṇḍavī on Friday 14 September 1621 during the reign of Kalyāṇasāgara.

7. Praśasti p. 188 no. 749. *Uttarādhyayanasūtra.* Copied for Hīrajīka, a resident of Pattananagara, and given to Lāvaṇyasāgara by Kalyāṇasāgara on Thursday 3 October 1622.

1. The *Jātakakarmapaddhati* was also commented on by Sumatiharṣa's contemporary, Kṛṣṇa, at Kāśī, this was published by J.B. Chaudhari, Calcutta 1955. See also *CESS* A2, 55a-55b, and A4, 59b-60a.
2. *NCC* vol. 3, pp. 259-260.
3. *CESS* A4, 387a.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

8. LDI 7836. *Uttarādhyayanasūtra.* Copied for Kastūrāi, wife of Sūrā, a resident of Bhīnnamāla, and given to Viśalakīrti Gaṇi by Kalyāṇasāgara in 1625.

9. Praśasti p. 195 no. 682. *Uttarādhyayanasūtra.* Given to Ratnasiṃha Gaṇi by Kalyāṇasāgara at Rādrahānagara on Wednesday 20 June 1627.

10. Praśasti p. 209 no. 748. *Candarājāno rāsa.* Copied for Devamūrti, pupil of Premajī Gaṇi, at Bhujanagara in 1641 during the rule of Kalyāṇasāgara.

11. LDI 6255. *Līlāvatī* of Bhāskara[1] with a vṛtti. Copied by Bhuvanaśekhara Gaṇi, pupil of Bhāvaśekhara Gaṇi, at Bhujanagara in 1652 during the rule of Kalyāṇasāgara.

12. LDI 3181. *Subhāśitaślokasaṅgraha* of Sakalakīrti. Copied by Amīmuni 1656 during the rule of Kalyāṇasāgara.

13. LDI 8402. *Sūtrakṛtāṅga.* Copied Bhāvaśekhara Gaṇi, pupil of Vivekaśekhara Gaṇi, at Navānagara in 1657 during the rule of Kalyāṇasāgara.

14. Praśasti p. 226 no. 834. *Upadeśacintāmaṇi* with a vṛtti. Copied by Bhāvaśekhara Gaṇi, pupil of Vivekaśekhara Gaṇi, at Añjāra on 5 November 1660 during the rule of Kalyāṇasāgara.

These 14 manuscripts establish the fact that Kalyāṇasāgara was the head of the Añcalagaccha for about 50 years; nos. 3, 4, and 11 further confirm his interest (and that of the Añcalagaccha) in jyotiḥśāstra. The scribe of nos. 13 and 14, Bhāvaśekhara Gaṇi, copied another manuscript of the *Śrīpatipaddhati* with Sumatiharṣa's *Subodhā* in the LD Institute (891) for Bhuvanaśekhara, the scribe of no. 11, at Śivapurīnagara in 1693.

The next pādas extol Sumatiharṣa's guru, Harṣaratna, as a teacher of astronomy (sidhānta) and mathematics (pāṭīgaṇita) and as the commentator on, among other, unnamed works, the *Brahmatulya* or *Karaṇakutūhala* of Bhāskara.[2] Unfortunately, no copy of the commentary has yet been located, nor is any other work of Harṣaratna known to be extant.

Finally, Sumatiharṣa states that he completed his vṛtti on the *Śrīpatipaddhati* at Padmāvati on 6 October 1616. This Padmāvatī probably the same as that in which Dhanarāja wrote, as we shall see shortly; it has been identified with Puṣkara near Ajmer[3]. The epithet śrīmatpārśvaśivaprasattinibhṛtā makes one think it possible that Padmāvatī is Vindhyāvalī (modern Bijauliā) on the Revā River in the Ūparamāla range between Chitor and Bundi; for it was a center of the worship of Pārśvanātha and of Śiva,[4] but so also was Puṣkara. More will be said of this below.

III. The *Kārikā*, a ṭīkā on the *Tājikasāra* composed by Haribhadra or Haribhaṭṭa, apparently in 1523. I have used manuscript 2541C of the India Office Library; the following edition of the final verses is based on that manuscript together with others at Gottingen (Kielhorn 121) and the LD Institute (6664) :

subodhā śrīpatīmahādevībrahmārkaparvaṇām ।
etasyā vṛttayo jñeyāḥ svasārā hṛdayaṃgamāḥ ॥
varṣe śailahayāṅgabhūparimite māse tathā phālgune
pakṣe śuklatare tithau daśamite śrīkheravāpūrvare ।
rājye śrīmati viṣṇudāsanṛpater vairībhavṛnde harer
vṛttiṃ śrīguruharṣaratnakṛpayā sāmantanāmākarot ॥
gurubāndhavaratnāhvadīrghāyurdhanarājayoḥ ।
nirantarāgrahād eṣā racitā tanutāc ciram ॥

1. *CESS* A4, 300b.
2. *CESS* A4, 322a-326a.
3. K.C. Jain, *Ancient Cities and Towns of Rajasthan*, Delhi 1972, p. 104.
4. *Ibid*. pp 400-404.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Sumatiharṣa here lists his previous commentaries as being on the *Śrīpatipaddhati* (no. II), the *Mahādevī* composed by Mahādeva in 1316,[1] the *Vivāhapaṭala* of Brahmārka (no I), and the *Bṛhatparvamālā* composed by Puruṣottama before 1490.[2] It is regrettable that two of these four are no longer in existence. He then states that he completed the *Kārikā* at Kheravā on 21 February 1621 during the reign of Viṣṇudāsa Nṛpati, a ruler of whom I have so far succeeded in discovering no other trace. Sumatiharṣa himself here assumes the title Sāmanta or feudatory. Finally, he claims to have written this ṭīkā upon the insistence of Ratna, a relative of his guru, Harṣaratna, and of Dhanarāja, whom we will discuss later. The colophon to the *Kārikā* names Harṣaratna's guru Mahopādhyāya Udayarāja Gaṇi; this information is also given in the colophon of the next work.

In the text itself Sumatiharṣa uses as his example the horoscope of an individual born on 7 May 1535 and his fifty-ninth anniversary horoscope, dated 7 May 1594.

Planets	*Text*	*Computation (7 May 1535)*	*Text*	*Computation (7 May 1594)*
Saturn	Cancer	Leo 4°	Cancer	Leo 6°
Jupiter	Aquarius	Pisces 5°	Aquarius	Aquarius 26°
Mars	Pisces	Aries 12°	Gemini	Cancer 5°
Sun	Taurus	Taurus 26°	Taurus	Taurus 26°
Venus	Taurus	Gemini 10°	Taurus	Taurus 23°
Mercury	Taurus	Gemini 6°	Taurus	Gemini 11°
Moon	Cancer	Cancer 25°	Aries	Aries 26°
Node	Cancer	Cancer 21°	Taurus	Taurus 20°

IV. The *Gaṇakakumudakaumudī*, a commentary on the *Karaṇakutūhala* composed by Bhāskara in 1183.[3] This is the only work of Sumatiharṣa's to have been printed; the edition by Mādhava Śāstrī Purohita was published at Bombay in 1901. I have also consulted the two Harvard manuscripts, Sanskrit 37 and 1105. The eighth introductory verse is :

śrīśrīpatīviditakeśavapaddhatī dve
brahmārkaśīghrakhagasiddhim atho vivṛtya ।
mālā ca parvasahitā bṛhatīti tasyāḥ
sārasya tājikadhuro vivṛtī anudyām ॥

This adds to the previously known commentaries on the *Śrīpatipaddhati*, the *Vivāhapatala*, the *Mahādevī* (śīghrakhagasiddhi), the *Bṛhatparvamālā*, and the *Tājikasāra*, one on the *Jātakapaddhati* of Keśava;[4] as is the case with so many other of Sumatiharṣa's works no manuscript of this one is presently available.

At the end of the ṭīkā are the following verses :

vindhyādriṃ nikaṣā purī suviditā sarvarddhi vṛddhyānvitā
tannetāsti bhaṭaḥ svavaṃśatilakaś caulukyavaṃśodbhavaḥ ।
suśrīvīramade sunītinipuṇo hemādrir evāparo
yo 'bhūd yāvanabhūpatīn sthiratarān pronmūlya rājanyake ॥

1. *CESS*, A4, 374a-376b.
2. *CESS*, A4, 209b.
3. *CESS*, A4, 322a-326a.
4. *CESS*, A2, 66b-70b; A3, 24a; and A4, 64a-65a.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

velākhye khalu mantriṇi priyavṛṣe dāna prasaktau sati
māṅgalyādrikalāmite gatavati śrīvikramāt saṃvati ।

māse prauṣṭhapade vināyakatithau daityejyavāre vare
cakre śrīgurubhāvataḥ sumatiyuggharṣeṇa caiṣā mudā ॥

The city near the Vindhyādri one might again guess to be Vindhyavalī, the modern Bijauliā in Mewar; this, however, was ruled by the Paramāras, whereas Sumatiharṣa's lord claimed to be a Caulukya. This chieftain, Vīramadeva, a second Hemādri who beat the Muslims, remains totally obscure to me, though several Rajput rulers bearing this name are known. The date given for the completion of the *Gaṇakakumudakaumudī* is Friday 10 August 1621. Within the text are examples for Saturday 21 February 1596; Thursday 11 March 1596; Monday 13 October 1600; Saturday 20 June 1601; Friday 26 September 1617; Tuesday 11 November 1617; Friday 14 November 1617; Wednesday 29 November 1620; and Tuesday 17 July 1621.

V. A vṛtti on the *Horāmakaranda* of Guṇākara.[1] Of this unusual work (it seems to be the only extant commentary on the *Horāmakaranda*) there is only one extant manuscript, no. 3368 in the Oriental Institute, Baroda, which is incomplete and which I have not as yet been able to consult. Sumatiharṣa's interest in the *Horāmakaranda* is attested to by his citations from it in his vṛtti on the *Śrīpatipaddhati*; it should also be noted that Rājaśekhara, the pupil of Buddhiśekhara Gaṇi, the pupil of Bhāvśekhara Gaṇi (who is probably the Bhāvaśekhara Gaṇi connected with manuscripts 11, 13, and 14 in the list of manuscripts associated with Kalyāṇasāgara Gaṇi), copied one of the LD Institute's manuscripts (6510) of Guṇākara's work in 1678—perhaps from Sumatiharṣa's copy.

This raises again the possibility—already apparent in the list of Kalyāṇasāgara manuscripts—of the existence of a "School" of jyotiḥśāstrins in the Añcalagaccha during the seventeenth century. Further evidence in this direction is provided by the *Mahādevīdīpikā*, a vṛtti on Mahādeva's *Mahādevī* (also commented on by Sumatiharṣa, though his vṛtti is lost) composed by Dhanarāja[2] of the Añcalagaccha at Padmāvatī in 1635. This Dhanarāja is undoubtedly the scholar who urged Sumatiharṣa to compose his *Kārikā* on Haribhadra's *Tājikasāra*, and Padmāvatī then is identical with the locality in which Sumatiharṣa wrote his *Subodhā*. For the *Mahādevīdīpikā* I have used manuscript 689 at the Oriental Institute, Baroda.

The upasaṃhāra gives the date, place, and circumstances of Dhanarāja's composition :

varṣe netranavāṅgabhūparimite jyeṣṭhasya pakṣe site
'ṣṭamyāṃ sadguṇapṛkthamannarayute padmāvatīpattane ।
rājā hy utkaṭavairināgadamano rāṣṭroḍavaṃśodbhavaḥ
śrīmān śrīgajasiṃhabhūpativaro 'sti śrīmaror maṇḍale ॥

jaine śāsana evam añcalagaṇe satsajjanaiḥ saṃstute
kalyāṇodadhisūrayaḥ śubhakarā nandantu bhūmaṇḍale ।
tatsevākarabhojarājagaṇayo vidvadvarā vācakā
āsan sarvasudhīmanaḥkamalinīsaṃbodhane bhānavaḥ ॥

kheṭānāṃ ki purā kṛtā budhamahadevena yā sāraṇī
tasyā daivavidāṃ sukhārthajananīṃ vṛttiṃ varāṃ vistarām ।

tacchiṣyo dhanarāja evam akarod dharṣeṇa bahvādarair
bahvarthaiḥ sahitāṃ ca paṇḍitapadād āptaprasakter guroḥ ॥

In these verses Dhanarāja informs us that he was the pupil of Bhojarāja Gaṇi (called Bhuvanarāja Gaṇi in the colophon), who honoured Kalyāṇasāgara Sūri, the ruler of the Añcalagaccha, and that he

1. *CESS* A2, 127b-128b; A3, 31b; and A4, 81a.
2. *CESS*, A3, 124a-124b, and A4, 117b.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

completed the *Mahādevīdīpikā* at Padmāvatī on 13 May 1635 while the Rāṣṭroḍa Gajasiṃha was ruling Marwar (1619-1638); the word harṣeṇa in the last verse may be an oblique reference to Sumatiharṣa or to Harṣaratna.

It is necessary now to consider again the question of the identification of Padmāvatī. That Puṣkara was called by this name in Jaina circles seems to be well attested; and Puṣkara, like Vindhyāvalī, had both Jaina and Śaiva temples. However, Ajmer (and Puṣkara almost certainly went with it) was in the possession of the Moghuls from 1556 till 1720, and this fact makes it difficult to explain Dhanarāja's claim to be writing under Gajasiṃha in 1635, unless some sort of control over it had been granted to Gajasiṃha as a faithful supporter of the Moghuls. Vindhyāvalī, on the other hand, has some famous Śaiva temples dating back to the period of the Cauhānas, and an image of Pārśvanātha was manifested there in the twelfth century; this fits in very well with the epithet given to Padmāvatī by Sumatiharṣa in the *Subodhā*, but neither is it known that Vindhyāvalī was called Padmāvatī nor was it ever in Marwar territory. Thus, the identification of Puṣkara with Padmāvatī must remain the more likely explanation of the facts though Dhanarāja's mention of Gajasiṃha remains a problem.

This is not the only problem of the *Mahādevīdīpikā*. For in this work not only does Dhanarāja refer to Thursday 9 March 1637, but also in several different places computations are given for Sīrohī in 1663 (the Baroda manuscript was copied a year earlier, in 1662). This date—Śaka 1585—is confirmed by the statement that it is 480 years from Śaka 1105, the epoch of Bhāskara's *Karaṇakutūhala*. The explanation for its occurrence must lie in the fact that 480 years is eight cycles of sixty years, though none of them begins with Mahādeva's epoch, 1318 (Śaka 1240). What Dhanarāja's connections with Sīrohī might be are not as yet evident.

But we do possess some remnants of his activities as a teacher of jyotiṣa in the form of manuscripts copied by his successors in the Añcalagaccha; these are listed in the *Śrīpraśastisaṅgraha* utilized previously.

1. p. 238 no. 888. The *Ṣaṭpañcāśikā* of Pṛthuyaśas[1] with the vṛtti of Bhaṭṭotpala.[2] Copied by Subhāgyarāja, the pupil of Harṣarāja, the pupil of Dhanarāja on Sunday 25 April 1669. The same scribe had the *Jambūcaritra* copied on Saturday 27 March 1669; p. 239 no. 884.

2. p. 277 no. 1061. The *Vasantarājaśakuna* of Vasantarāja with a vṛtti.[3] Copied by Jinarāja, the pupil of Hīrānanda, the pupil of Dhanarāja on Wednesday 18 September 1706.

One final monument that these Jaina jyotiṣis of Añcalagaccha have left is one of the manuscripts of Dhanarāja's *Mahādevīdīpikā* preserved at the LD Institute (7129). For it was copied by Buddhiśekhara Gaṇi, the pupil of Bhāvaśekhara Gaṇi, at Rājanagara in 1672 for Rājaśekhara Gaṇi of the Añcalagaccha; Rājaśekhara, as we have seen, was the scribe of a manuscripts of the *Horāmakaranda* and the pupil of Buddhiśekhara. I have little doubt that future explorations of jyotiṣa manuscripts from Rajasthan will reveal much more concerning the activities of these teachers, commentators, and scribes of jyotiṣa works, though Sumatiharṣa will undoubtedly remain their outstanding representative.

1. *CESS*, A4, 212b-221b.
2. *CESS*, A4, 277b-281b.
3. Probably that of Bhānucandra; see *CESS*, A4, 292a-292b.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org